International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 22-02-2022, Accepted: 09-03-2022, Published: 24-03-2022
Volume 8, Issue 2, 2022, Page No. 29-34

वाल्मीकीय रामायण में सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के विविध रूप

नवल पाल[1], ज्ञानी देवी गुप्ता[2]
[1] हिन्दी शोधार्थी, गुरू काशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो, पंजाब, भारत
[2] सहायक आचार्य हिन्दी, विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, गुरू काशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो, पंजाब, भारत

सारांश
आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने मानव जीवन में आदर्श नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठापित करने हेतु आदर्श पिता, आदर्श पति, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श मित्र, आदर्श पत्नी आदि अनेक भूमिकाओं में विविध सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का संचयन कर रामायण में उदात्त मानवीय आदर्शों को कुछ इस प्रकार स्थापित कर दिया है कि– विकट से विकट सामाजिक परिस्थितियों में रहकर भी हम मानव आज भी अपने शील, सदाचरण तथा मर्यादा की रक्षा के उपाय रामायण का अध्ययन–मनन करते हुए भलीभॉति ढूढ़ लेते हैं। कारण कि वाल्मीकि के रामायण–काल में सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य अपने चरम पर थे।

मूलशब्दः संचयन, प्रतिष्ठापित, नैतिक, सर्वोत्तम, निदर्शन, उदात्त, अत्यंत, भ्रातृजाया, निर्वासित, सीतान्वेशण, जन्मार्जित

प्रस्तावना
महर्षि वाल्मीकि संस्कृत साहित्य के आदि कवि हैं तथा उनके द्वारा लिखित रामायण साहित्य–जगत् का आदि काव्य है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि कवि–कर्म अथवा साहित्य–सृजन संबन्धी संकल्पनाओं की ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति के नैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि मानवीय आादर्शों के स्वरूप की प्रथम समझ भी वास्तव में हमारे भारतीय समाज में उन्हीं से विकसित हुई है। हम सब जानते हैं कि रामायण की रचना किसी देव चरित के वर्णन के लिए नहीं बल्कि मानव समाज के मध्य आदर्श गुणों से संपन्न एक महामानव के चरित्र के प्रस्तुतीकरण के लिए की गई थी। वाल्मीकि जी ने चारियेण च को युक्तः[1] इस प्रश्न के द्वारा महर्षि नारद जी से जिज्ञासा की थी तब मानवीय चरित्र का सर्वोत्तम निदर्शन होने के कारण नारद जी ने –'तैर्युक्तः श्रूयतां नरः'2 कहकर उन्हें श्रीराम को इस ग्रन्थ का नायक बनाने को कहा था। फलतः आदि कवि ने मानव जीवन में आदर्श नैतिक मूल्यों को प्रतिश्ठापित करने हेतु आदर्श पिता, आदर्श पति, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श मित्र, आदर्श पत्नी आदि अनेक भूमिकाओं में विविध सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का संचयन कर रामायण में उदात्त मानवीय आदर्शों को कुछ इस प्रकार स्थापित कर दिया है कि– विकट से विकट सामाजिक परिस्थितियों में रहकर भी हम मानव आज भी अपने शील, सदाचरण तथा मर्यादा की रक्षा के उपाय रामायण का अध्ययन–मनन करते हुए भलीभॉति ढूढ़ लेते हैं। कारण कि वाल्मीकि के रामायण–काल में सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य अपने चरम पर थे !

रामायणकालीन समाज में परिवार की भूमिका अत्यंज महत्त्वपूर्ण थी। रामायण में माता, पिता और आचार्य– इन तीनों के प्रति आज्ञापालन को संतान का परम नैतिक कर्त्तव्य कहा गया है। जो प्राणी इन तीनों के प्रति अवज्ञा अथवा अनादर करता है, उन्हें नरक की प्राप्ति होती है–

मातरं पितरं यो हि आचार्यं चावमन्यते।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः।।[3]

तत्कालीन संस्कृति में परिवार में बड़े भाई का स्थान महत्वपूर्ण होता था। माता पिता के बाद पारिवारिक नैतिक दायित्व ज्येष्ठ भ्राता पर ही आता था। भ्रातृ–प्रेम का आदर्श रामायण में चित्रित राम–भरत प्रेम है। ऐसा भ्रातृ –प्रेम एवं कर्त्तव्य परायणता अन्यत्र सुदुर्लभ है। भ्राता भरत चौदह वर्षों तक श्रीराम की पादुका के सेवक बनकर राज्य का शासन कार्य संचालित करते रहे और वल्कल वस्त्र धारण कर मुनियों की तरह जीवन यापन किया। लक्ष्मण भी अपने बड़े भाई के लिए द्वितीय प्राण सदृश थे–प्राण इवापरः।

रामायण में ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी से मातृवत् व्यवहार की प्रेरणा दी गई है। वाल्मीकि के मतानुसार ज्येष्ठ भ्राता अनुजों के लिए पिता तुल्य और भ्रातृजाया माता के तुल्य होती है। राम के वनवास जाने के समय जब लक्ष्मण सुमित्रा से आशीर्वाद लेने गए, तो सुमित्रा ने लक्ष्मण से कहा –

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजा।[4]

आदर्श समाज वही है जिसमें स्तेय, तस्कर, लोभ असत्य आदि दुर्गुणों का सर्वथा अभाव हो। इसीलिए वाल्मीकि जी ने तत्कालीन समाज का चित्रण करते हुए कहा है कि रामराज्य में लोगों में लोभ का अभाव था तथा सभीलोग अपनी वस्तु में ही संतुश्ट थे। परद्रव्यापहरण की तो कामना भी उनमें उत्पन्न नहीं होती थी–

नराः तुष्टाः धनैः स्वैःस्वैरलुब्धा सत्यवादिनः।[5]

समाज में सभी प्रकार के लोग रहते थे। लोगों को सभी के साथ उचित–अनुचित का ध्यान रखते हुए नैतिकतापूर्ण जीवन यापन करना होता था। रामायण काल में नारी के प्रति पुरूष का बल प्रयोग अथवा किसी भी प्रकार का अनुचित व्यवहार सर्वथा अनुचित एवं गर्हणीय माना जाता था। हम देखते हैं कि क्रोधोन्मत्त हनुमान तारा के समक्ष पहुँचकर अपने क्रोध का निवारण कर लेते हैं क्योंकि नारी के प्रति सज्जन व्यक्ति कभी कठोर व्यवहार अथवा बलप्रयोग नहीं करता–

नहिस्त्रीशु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम्।[6]

वाल्मीकि जी का मानना था कि नारी सर्वत्र एवं सर्वथा अवध्या होती है। सभी प्रकार से उसकी रक्षा करना पुरूष का नैतिक कर्त्तव्य है।इसीलिए मंथरा के प्रति बल प्रयोग के समय इसे अनैतिक कहकर रोका गया था–

अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः रक्ष्यतामिति।[7]

नारी अपहरण रूपी अनैतिक कार्य की निंदा करते हुए कहा गया है कि इससे संसार में महान् अपयश की प्राप्ति होती है, आयु क्षीण होता है,धन का नाश होता है तथा घोर पाप का भागी बनना पड़ता है–

अयशस्यमनायुश्यं परदाराभिमर्शनम्।
अर्थक्षयकरं घोरं पापस्य च पुनर्भवम्।।[8]

अतः नारी के अपहरण को चार महान् दुराचारों में से एक माना जाता था, अतः इसे त्याग देना ही नैतिक पुरुङ्ख का कर्त्तव्य बताया गया है –

हिंसा परस्व हरणे परदाराभिमर्शनम्।
त्याज्यमाहुर्दुराचारं वेश्म प्रज्वलितं तथा।।[9]

वास्तव में केवल मानव स्त्रियॉ ही नहीं अपितु प्राणिमात्र की स्त्रियॉ अवध्य हैं। इसीलिए शुर्पणखा एवं अयोमुखी के वध की अपेक्षा उनके अंग भंग करने के उदाहरण से स्पश्ट होता है कि दुराचारिणी स्त्री के भी वध की अपेक्षा कुरूप करना ही नैतिक एवं उचित समझा जाता था।
मन वाणी तथा कर्म से पति एवं परिवार की सेवा में लगे रहना, श्रेश्ठ नैतिक आचरण करना ,कार्य कुशलता और परहित चिंतन करना ही सन्नारी का गुण कहा गया है क्यों कि इन्हीं सद्गुणों के आधार पर वह गृहसंचालिका बनकर पति को मित्रवत् हित कार्यों में प्रेरित करती हुई गृहलक्ष्मी के पद पर अधिश्ठित होती है।
विवाहोपरान्त नारी जब दाम्पत्य जीवन में पदार्पण करती है तो उसका भाग्य पति के साथ जुड़ जाता है। संसार में पिता–माता, भ्राता पुत्र,पुत्रवधू आदि सभी अपने पुण्यार्जित पदार्थ का भोग करते हैं परन्तु पत्नी अपने पति के भाग्य की भागीदारिणी बनकर जीवन यापन करती है–

आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुशा।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते ।।
भर्तुः भाग्यन्तु भार्येका प्राप्नोति पुरूषर्शभ।।[10]

मोहासक्त रावण के प्रति सीता का यह उत्तर–

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरं।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।।[11]

कन्या अपने मातृ–पितृ कुल एवं जहॉ ब्याही जा रही है, उन तीनों कुलों की प्रतिष्ठा को बनाए रखेगी, इसमें सदा संशय बना रहता है। अतः वाल्मीकि जी स्पष्टतः यह निर्देश देते हैं कि–

न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके।
मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चौव प्रतीयते।।
कुलत्रयं सदा कन्या संशये व्याप्य तिष्ठति।[12]

वाल्मीकि जी का विश्वास है कि घर में जब कन्या जन्म ग्रहण करती है तब घर में सुख–संमृद्धि आदि की अतिशय वृद्धि होने लगती है। सीता के जन्म ग्रहण करते ही राजा जनक का घर धन–धान्य, सुख समृद्धि से परिपूर्ण हो गया था–

अवाप्तो विपुलामृद्धिं मामवाप्य नराधिपः।[13]

पिता की सम्मति के विना कन्या का पति वरण करना नीति विरुद्ध माना जाता था। इसीलिए आदि कवि ने कन्या को 'पितृवशा' कहा है।अर्थात् विवाह के विशय में निर्णय करना पिता का ही नैतिक अधिकार था।राजा दण्ड ने जब ऋशिपुत्री अरजा से विवाह तथा समागम की इच्छा व्यक्त की तो ऋशिकन्या द्वारा दिया गया उत्तर इसी तथ्य की पुश्टि करता है–

यस्य नौ दास्यति पिता स नो भर्ता भविश्यति'[14]
मां मा स्पृशा बलाद्राजन् कन्या पितृवशामहम्।
वरयस्व नरश्रेश्ठ पितरं में महाद्युतिम्।।[15]

जैसे निर्धन प्राणी धन नाश होने पर चिंता में डूब जाते हैं–

पतिसंयोग सुलभं वयो दृश्ट्वा तु में पिता।
चिंतामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः।।[16]

स्त्री का संरक्षण एवं भरण पोशण पुरूष की शक्ति एवं श्रम पर निर्भर होता था। पति का प्रमुख नैतिक कर्तव्य था कि पत्नी की रक्षा पूर्ण सावधनी से करे।
वाल्मीकि जी समग्र राश्ट्र के हित चिंतक कवि रहे हैं। राश्ट्र का केन्द्र राजा होता है। राजा प्रजा की इच्छा का दमन करने वाला नरपति नहीं होता बल्कि वह प्रजा का रंजक उनका हितचिंतक तथा प्रजा का उन्नायक होता है। वाल्मीकि जी का कथन है कि दम, शम, क्षमा, धर्म, धृति, सत्य, पराक्रम और दण्ड ये राजा के प्रधान गुण हैं–

दमःशमःक्षमाधर्मौ धृतिःसत्यं पराक्रमः।
पार्थिवानां गुणा राजन्दण्डश्चाप्यपराधिशु।।[17]

राजा का व्यवहार सदा ऐसा होना चाहिए जिससे प्रजा में कभी भी दश्प्रवृत्ति की संभावना प्रसूत न हो, क्योंकि राजा के आचरण का प्रभाव प्रजा पर सर्वाधिक होता है–

यद्वृत्ताः सन्ति राजानः तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः।।[18]

अतः राम के मन में शंका थी कि सीता को निर्वासित नहीं किया तो प्रजामें अनैतिकता का प्रसार होने लगेगा जबकि अनैतिक प्रवृत्ति को रोककर प्रजा को नीतिमार्ग पर लाना ही राजा का परम धर्म होता है। इसीलिए राम ने सीता को पतिव्रता मानते हुए भी

अन्तरात्मश्च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम् [19] उनका परित्याग किया।

राम–राज्य में आदर्श न्याय का यही विधान था कि पुत्र भी यदि दोशी हो तो उसे दण्ड दिया जाता था और यदि शत्रु भी अनपराधी हो तो उसे मुक्त करके सहानुभूति का व्यवहार किया जाता था–

पुत्रेऽपि प्राप्त दोशे धर्मतो दण्डपातिनः।
अद्रोग्धारश्च धर्मेण शस्त्रोरप्यकृतागसः।।[20]

इसीलिए सभी अपने–अपने धर्म का पालन करते थे और पूरे राश्ट्र में असत्यभाशी,चोर तस्कर ,लोभी,कामी व्यक्तियों का अभाव था। प्रजा के आय का छठा भाग लेने के बाद राजा का यह नैतिक कर्त्तव्य हो जाता था कि वह पुत्रवत् प्रजा की रक्षा करें। जो इससे पराड्मुख हो,उसे कर लेने का नैतिक अधिकार नहीं होता था–

यो हरेद्बलिशड्भागं न च रक्षति पुत्रवत्।
अधर्मः सुमहान् नाथ भवेत् तस्य तु भूपतेः।।[21]

वाल्मीकीय रामायणमें शुचिता पर विशेश बल दिया गया है। मिट्टी–जल आदि के द्वारा शरीर को शुद्ध तथा प्रक्षालित करना एवं मेध्य आहार के द्वारा शरीर के कण–कण को अशुद्धि से परे रखना वाह्य शौच कहा जाता था। तथा मैत्री, करुणा, मुदिता उपेक्षा आदि वृत्तियों द्वारा चित्त को निर्मल बनाना आभ्यंतर शौच माना जाता था। वाल्मीकि ने दोनो प्रकार के शौच धारण करने की अनुशंसा की है। आदर्श पुरूष राम में समुपस्थित गुणों को बताते हुए वे कहते हैं–

सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूशा ध्रुवाण्येतानि राघवे।।[22]

वास्तव में मनुष्य के चारित्रक पतन का कारण है– उसका असंयम ! काम, क्रोध लोभ, मोह, घृणा, स्वार्थ आदि आदि ! और रामायण के अधिकाधिक श्लोकों में इन्ही दुश्प्रवृतियों पर नियंत्रण करने और उन्हे अपने अनुशासन में में लेने का आग्रह किया गया है ! वाल्मीकि रामायण में स्पश्ट रूप से कहा गया है कि मन ही इन्द्रियों के निग्रह में प्रधान तथा प्रभावशाली हेतु है–

मनो हि हेतुः सर्वेशामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्चमे सुव्यवस्थितम्।।[23]

आशय यह है कि इन्द्रिय रूपी अश्वों को मनरूपी लगाम के द्वारा निग्रह में लिया जा सकता है। हनुमान ने लंका जाकर सीतान्वेशण करते हुए रात भर भ्रमण किया। अनेक सुन्दरियों को, उनकी कामक्रीड़ाओं को देखा फिर भी उनके मन में कोई कोई विकार प्रसूत नहीं हुआ क्योंकि उनका मन सर्वथा नियंत्रित था–

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्तारावणस्त्रियः।
न हि मे मनसः किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते।।[24]

आदिकवि का आदेश है कि मानव को नैतिक परम्पराओं को अपनाते हुए नम्रता का आश्रय लेकर जितेन्द्रिय बनने का प्रयास करना चाहिए–

भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः।
कामक्रोध समुत्थानि त्यजेथाः व्यसनानि च।।[25]

वास्तव में दुःख की प्राप्ति का कारण मनुष्य का पूर्व जन्मार्जित कर्म होता है परंतु अज्ञानतावश प्राणी अन्यों को अपने दुःख का कारण मानने लगता है। जबकि दुःख तो पूर्वजन्म के अशुभ कर्मों का परिणाम है–

दुखमेवं विधं प्राप्तं पुराकृतमिवाऽशुभम्।[26]

वाल्मीकि जी के अनुसार शुभाचरण से शुभ तथा अशुभाचरण से अशुभ एवं दुःख,शोक आदि की प्राप्ति होती है–

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्त्ता कर्मजमात्मनः।।[27]

इसलिए मनुष्य को हमेशा शुभाचरण ही करना चाहिए तथा दुराचरण का परित्याग करना श्रेयस्कर होता है–

तस्माद्धर्मं सुखार्थाय कुर्यात्, पापं विसर्जयेत्।
धर्माद्राज्यं धनं सौख्यमधर्मात् दुःखमेव च।।
पापस्य हि फलं दुःखं तद् भोक्तव्यमिहात्मना।।[28]

आदि कवि का यह भी मानना है कि मानव जीवन में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करना कई परिस्थितियों में अत्यंत कठिन हो जाता है। अतः देश काल परिस्थिति के अनूसार ही कर्त्तव्याकत्तर्व्य का निर्णय किया जाना चाहिए। उनका यह भी निर्देश है कि समाजिक व्यवहार में सर्वत्र ही मध्यम मार्ग का अवलम्बन करना श्रेश्ठ होता है। क्योंकि अति सर्वत्र दोशपूर्ण परिणाम लेकर आता है। इसीलिए उनका मानना है कि जीवन में न तो किसी से अत्यधिक प्रेम करना चाहिए न अधिक वैराग्य रखना चाहिए–

न चति प्रणयः कार्यः कर्त्तव्योऽप्रणयश्च ते।
उभयं हि महान्दोशतस्मादन्तरदृग्भव।।[29]

दैवीय विधान को अर्थ, काम, पराक्रम, आदेश अथवा अनुनय–विनय किसी से भी टाल पाना असंभव होता है–

नैवार्थेन न कामेन विक्रमेण न चाज्ञया।
शक्या दैव गतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता।।[30]

जो मानव जीवन में निश्ठापूर्वक सत्याचरण करता है उसकी कभी अपमृत्यु नहीं होती, न ही वह दुःख का भागी होता है । अतः संसार में सत्य से बढ़कर अन्य काई परम पद नहीं है जिसे प्राप्त करने की इच्छा की जाए–

सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परमं गच्छतिक्षयम्।
सत्यमूलानि सर्वाणि, सत्यान्नास्ति परमपदम्।।[31]

त्याग एवं सन्तोश वृत्ति की आदि कवि ने सर्वत्र ही प्रशंसा की है। उनका मानना है कि नागरिकों के इन्हीं गुणों से राश्ट्र एवं समाज परिपुश्ट होता है। उनका यह भी मानना है कि जीवन का वास्तविक सुख सन्तोश में निहित है। राजा दशरथ ने पुत्रेश्टि यज्ञ की समाप्ति के बाद ब्राह्मणों को बहुत सारी भूमि दान करनी चाही थी परंतु ब्राह्मणों ने राजा से कहा कि हम पृथ्वी का पालन करने में असमर्थ हैं। हमारा मुख्य कार्य अध्ययन है अतः इसे आप ही रखें और इसका पालन करें–

नभूम्याकार्यमस्माकं न हि शक्तास्म पालने।
रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिव।। [32]

इस प्रकार ब्राह्मणों ने राज्य लौटा दिया और थोड़ी सी मणियॉ,रत्न और गौ मात्र लेकर अपनी सन्तोशवृत्ति का परिचय दिया। संतोशवृत्ति का दूसरा अत्यंत सुन्दर प्रसंग तब देखने को मिलता है जब राम के वन प्रस्थान के समय दशरथ उन्हें सेवक और धन साथ ले जाने को कहते हैं तब राम ने केवल और केवल वल्कल वस्त्र साथ ले जाने की इच्छा व्यक्त की और अन्य सभी वस्तुओं का त्याग कर दिया –

त्यक्त भोगस्य मे राजन् वने वन्येन जीवितः।
किं कार्यमनुपात्रेण त्यक्त संगस्य सर्वतः।यो हि त्यक्त्वा
गजश्रेश्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुंजरोपमम्।।[33]

सन्तप्त क्रौंची का करुण स्वर सुनकर कविकर का अकस्मात् मा निशाद प्रतिष्ठा कह उठना अपने आप में ही न केवल अहिंसा रूपी नैतिक मूल्य की प्रतिश्ठा करता है बल्कि हम सब को दूसरों के प्रति संवेदनशील होने का आग्रह भी करता है। महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में चरित्र ही मानवता की कसौटी रही है। चरित्र से युक्त मनुष्य की खोज तथा उसका विशद वर्णन ही रामायण का मुख्य उद्दश्य है। अतः कहा जा सकता है कि–वाल्मीकि भारतीय साहित्य के आदि कवि ही नहीं बल्कि भारतीय समाज एवं संस्कृति के संस्कारक कवि भी हैं। व्यक्ति के लिए मृदुभाषी एवं सत्यवादी होना तो आवश्यक है ही, परंतु राम में वाल्मीकि जी ने एक अद्भुद गुण का सद्भाव व्यक्त किया है; वह है उपकार की स्मृति तथा अपकार की विस्मृति। सीता का संदेश सुनकर विह्वल होकर राम जब हनुमान से कहते हैं कि–मय्येव जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं हरे। नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकांक्षति।।
निश्चित रूप से यह कथन प्रत्युपकार की इच्छा रखने वालों को भी अपनी भावनाओं का पुनरावलोकन करने को विवश करता है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर श्रीराम विलाप करते हुए कहते हैं –

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।।[34]

उक्त कथन से श्रीराम का लक्ष्मण के प्रति अनन्य अनुराग ही झलकता है।
रामायण में चित्रित समाज में संस्कारों का भी विशेश महत्व था। विभिन्न संस्कारों का आयोजन करके मनुष्य के आन्तरिक गुणों को उत्प्रेरित कर उसे उदात्त बनाने का प्रयास किया जाता था। जन्म, उपनयन, विवाह आदि कुछ उल्लासमय संस्कार थे तो वहीं अन्त्येष्टि जीवन के अन्तिम सत्य का परिचायक होने के कारण महत्वपूर्ण होता था। आशय यह है कि अलौकिक शक्ति में आस्था, आत्मा की अमरता, संचित–क्रियमाण एवं प्रारब्ध–इन तीन रूपों में प्रचलित कर्म का सिद्धान्त त्यागमय भोग की अनुशंसा– आदि प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना में पिरोए हुए कुछ ऐसे आदर्श थे जिन्होंने समाज–परिवार एवं व्यक्ति इन सभी को अधिकाधिक विकसित किया और उनमें सन्तुलन भी बनाए रखा था।
रामायण का नैतिकमूल्य कदम–कदम पर पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता, आश्रम व्यवस्था, वर्ण–व्यवस्था, पुरूषार्थ–चतुष्टय, एवं सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य एवं अनासक्ति पर बल देता है। आदिकवि हमें इसके द्वारा सान्त से अनन्त की ओर, व्यश्टि से समश्टि की ओर और अंधकार से प्रकाश की ओर तथा भेद से अभेद की ओर ले जाने का प्रयास करते दिखाई देते हैं।
वाल्मीकि जी की मान्यता थी कि युद्धक्षेत्र में मत्त सुप्त तथा रुग्ण अथवा कृश की हत्या से भ्रूण हत्या का पाप लगता है। इसी प्रकार समुचित कारण के अभाव में युद्ध करना, आक्रमण कर देना अनुचित कहा गया है। युद्ध से पूर्व सूचना देना भी अपेक्षित होता था अन्यथा वह धर्मयुद्ध नहीं कहलाता। अपने सैनिकों का सम्मान तथा उन्हें संतुष्ट करना, मनसा वाच उनका पोषण और अनुरंजन करना राजा का पुनीत कर्त्तव्य माना जाता है। राजा अपने गुप्तचरों के द्वारा दूरस्थ कार्यों को भी गुप्तचरों के द्वारा देखता था, इसीलिए राजा दीर्घचक्षुः भी कहलाता था। साम, दान, दण्ड, भेद–ये राजाओं की प्रमुख नीतियॉ थीं। प्रथम तीन के द्वारा कार्य सिद्धि न हो पाने की स्थिति में दण्डनीति के प्रयोग की व्यवस्था की जाती थी। जबकि आज की राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं प्रशासकों पर दृश्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि प्रशासकों का स्वयं का जीवन ही नैतिक दृश्टिकोण से अत्यंत मलिन दिखाई देता है। अर्थ लोलुपता की पराकाश्ठा उन्हें पथभ्रश्ट किए दे रही है। ऐसे में राजा राम का आदर्श सामने रख कर यदि हमारे प्रशासक अपना दायित्व निभाने का प्रयास करें तो निश्चित रूप से उसके चामत्कारिक परिणाम होंगे।
परंतु वाल्मीकि जी द्वारा दी गईं ये नैतिक शिक्षाएं वर्तमान युग एवं परिस्थितियों में मानों अंतिम सॉसें गिन रही हैं। देश एवं विश्व की प्रतिस्पर्द्धा से संतुलन बनाने की चिन्ता में मानव ने उनके आदर्शों को लगभग छोड़ ही दिया है। स्वार्थ एवं अर्थ लोलुपता अब यहॉ तक बढ़ चुकी है कि मानव के पारस्परिक सम्बन्ध रुग्ण से हो चुके हैं। आज की पीढ़ी को तो भारतीय धर्म एवं नीतिशास्त्र की आधारशिला माने जाने वाले श्रीराम का चरित्र–व्यक्तित्व भी पूरी तरह निर्विवाद नहीं लगता। वह पुरुशोत्तम राम को कहीं न कहीं गर्भिणी पत्नी को लोकापवाद मात्र के भय से त्याग देने वाले क्रूर पति के रूप में देखने का प्रयास भी करने लगी है। आशय यह है कि के परिवारों में घटते जा रहे अनुशासन एवं स्नेह–बन्धन को अगर आज कहीं से नई उर्जा मिल सकती है तो केवल रामायणकालीन परिवेशा के आदर्शों के साथ अनुकूलन बिठाकर और उन्हें अपने जीवन में उतार कर ही पुनः अपने परिवारों की प्रतिश्ठा बचाई जा सकती है। आधुनिक काल में नैतिकता का अवमूल्यन कहीं भ्रष्टाचार बनकर दीमक की भान्ति देश और समाज को चाटता दिखाई देता है, तो कहीं कन्या–भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, महिला–उत्पीड़न जैसी विड़म्बनाएं प्राचीन भारतीय मान्यताओं को अंगूठा दिखाने लगी हैं। अस्वस्थ एवं अनैतिक जीवन–शैली ने शनैः शनैः मनुष्य के पूरे जीवन का व्याकरण ही बदल कर रख दिया है। परिणामतः छोटी अवस्था से ही मानव जीवन रोग–शोक एवं परिताप से पीड़ित होने लगा है। कहना न होगा कि इन समस्याओं की विकरालता एक सशक्त समाधान मॉगती है। और इन समस्याओं का समाधान भारतवर्श के सर्वप्राचीन काव्यग्रन्थ रामायण

से सहज ही प्राप्त हो सकता है। हम देखते हैं कि आधुनिक समाज में संयुक्त परिवारों का चलन टूट रहा है और एकल परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही है। एकल परिवारों में जीवन यापन करने वाले अनेक दम्पति ऐसे भी होते हैं जहॉ पति–पत्नी दोनो मिलकर आजीविका चलाते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चों का उचित रूप से पालन–पोशण नहीं हो पाता। बच्चों में उत्तम विचार, व्यवहार एवं संस्कारों का समारोपण वास्तव में माता–पिता के धैर्य एवं ध्यान से ही संभव हो पाता है। लेकिन आज के अभिभावकों के पास अपने बच्चों को देने के लिए न समय है न संयम! ऐसे विकृत एवं कुंठित परिवारों में पली बढ़ी आज की युवा पीढ़ी के चरित्र में त्याग, पारस्परिक सौहार्द्र, एवम् आस्था जैसे सद्गुणों का सद्भाव नहीं मिलता। और आगे चलकर यही संस्कारहीन बच्चे न केवल अपने परिवारों के लिए बल्कि पूरे देश एवं समाज के लिए विविध समस्याओं की जड़ बन जाते हैं। वाल्मीकीय रामायण इस प्रकार की समस्याओं को निर्मूल करने में अग्रणी है।

आधुनिक समाज में नैतिकता के इस ह्रास को रोकने के लिए एवं स्वस्थ जीवन–पद्धति का विकास करने के लिए यूं तो अब हमारे विद्यालय एवं महाविद्यालय प्राचीन साहित्य के पृष्ठों से कुछ सूक्तियों एवं शाश्वत–संदेशों को उठाकर, उन्हें ज्यादातर अंग्रेजी साहित्य में अनूदित कर, लघुकथाओं के प्रारूप में रंगबिरंगे चित्रों के साथ चिकने चमकीले पृष्ठों पर छापकर अथवा मॉरल साइंस की पुस्तक के रूप में गढ़ कर विद्यार्थियों के बस्ते में डालने का कुछ प्रयास अवश्य कर रहे हैं जबकि कुछ उदारचेता रामायणकालीन वही प्राचीन चिंतन आर्ट ऑफ लिविंग के रूप में प्रचारित–प्रसारित करते दिखाई देते हैं। लेकिन केवल कुछ लोगों के इस प्रयास से आज के 21वीं शताब्दी के तर्कशील अथवा शंकालु मानव का मन परितोश प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसी विशम परिस्थितियों में नैतिकता से जुड़ी समस्त समस्याओं के समाधान के लिए यह अति आवश्यक है कि हमारे इस प्राचीन धर्मग्रंथ के उदर में संयम और संस्कार के जो बीज दबे पड़े हैं उन्हें वहॉ से निकाल कर आम नागरिकों के चरित्र एवं चिंतन में बोने का विधिवत् प्रयास किया जाय। यह गुरुतर दायित्व प्रत्येक परिवार के मुखिया और भाशा एवं साहित्य के प्रत्येक शिक्षक को ही पूरी ईमानदारी के साथ निभाना होगा। ताकि वाल्मीकीय रामायण भारतीय नर–नारियों के लिए केवल हर रोज सुबह–सुबह पढ़ने एवं पूजने भर का ही ग्रन्थ बनकर न रह जाय बल्कि वह हमसब के लिए हमारी आत्मा का गुण बनकर दैनिक जीवन एवं व्यवहार का भी अनिवार्य अंग बन कर उतर सके।

सन्दर्भ सूची

1. वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड– 1/3
2. वही, बालकाण्ड– 1/7
3. वही, उत्तरकाण्ड– 15/2
4. वही, अयोध्याकाण्ड– 35/8
5. वही, बालकाण्ड 6/6
6. वही, किश्किंधाकाण्ड 33/36
7. वही, अयोध्याकाण्ड 72/20
8. वही, युद्धकाण्ड 9/15
9. वही, युद्धकाण्ड 87/22
10. वही, अयोध्याकाण्ड 24/2,3
11. वही, सुन्दरकाण्ड 37/62
12. वही, उत्तरकाण्ड 9/7
13. वही, अयोध्याकाण्ड 118/38
14. वही, उत्तरकाण्ड 80/9
15. वही, उत्तरकाण्ड 80/11
16. वही, अयोध्याकाण्ड 110/33
17. वही, किश्किंधाकाण्ड 17/25
18. वही, अरण्यकाण्ड 109/9
19. वही, उत्तरकाण्ड 44/9
20. वही, बालकाण्ड 7/13
21. वही, अरण्यकाण्ड 5/10
22. वही, अयोध्याकाण्ड 22/30
23. वही, सुन्दरकाण्ड 9/39
24. वही, सुन्दरकाण्ड 9/38
25. वही, अयोध्याकाण्ड 3/26
26. वही, अयोध्याकाण्ड 12/79
27. वही, अयोध्याकाण्ड 57/4
28. वही, उत्तरकाण्ड15/24, 25
29. वही, किश्किंधाकाण्ड 22/23
30. वही, युद्धकाण्ड 114/26
31. वही, बालकाण्ड 20/8
32. वही, बालकाण्ड 13/1/40
33. वही, अयोध्याकाण्ड 33/2, 3
34. वही, युद्धाकाण्ड 102/12